



गीतांजलि श्री के उपन्यास 'माई' में स्त्री अस्मिता के अनुत्तरित प्रश्न

विभा पुरोहित (शोधार्थी)

हिन्दी विभाग, मानविकी संकाय,

मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय

उदयपुर, राजस्थान, भारत

शोध संक्षेप

स्त्री अस्मिता से तात्पर्य स्त्री के 'स्वत्व' की पहचान या उसके 'वजूद' से है। हर इंसान अपने कुनबे और परिवेश में अपनी मौलिकता के साथ जीना चाहता है और इसके लिए हमेशा हरसंभव प्रयास करता रहता है। सामान्य परिस्थितियों के चलते सब कुछ जब तक ठीक-ठाक बना रहता है तब तक इंसान अपने प्रवाह में जीता रहता है, लेकिन जब किसी क्षण उसे यह आभास होता है कि वह अपनी सोची बातों और अपनी कल्पनाओं में जी नहीं पा रहा है, तब वह अपने मौलिक अस्तित्व की तलाश परिवार, समाज और परिवेश में करने लगता है। प्रस्तुत शोध पत्र में गीतांजलि श्री के उपन्यास 'माई' में स्त्री अस्मिता के अनुत्तरित प्रश्नों पर विचार किया गया है।

स्त्री अस्मिता के प्रश्न

परिवार की हर इकाई अपने-अपने हिसाब से व्यक्तित्व को ढालना और ऊँचाइयाँ देना चाहती है, लेकिन वास्तविकता यह है कि परंपरागत धार्मिक रूढ़ियों, परिवेशगत हालातों, सामाजिक अर्थ व्यवस्था आदि की बदौलत स्त्रियों को शिक्षा और सम्पत्ति के अधिकारों, सामाजिक हैसियत आदि से वंचित करने का उपक्रम ही किया है। स्त्रियों को वैवाहिक रिश्तों और परिवार की परंपरागत रूढ़ियों में बाँधकर इस कदर नज़रबंद कर दिया है कि स्त्री न अपनी रह पायी और न ही औरों के लिए जी पाने का माद्दा पैदा कर पायी। स्त्री मनोविज्ञान को सही अर्थों में समझने की कोशिश की जाए तो साफ-साफ यही सामने आएगा कि स्त्री अपनी स्वाधीनता त्यागने को विवश हो जाए अथवा अपने आत्म-सम्मान को छोड़ कर सम सामयिक धाराओं में बहने लग जाए तभी वह सामान्य जिन्दगी बिता सकती है अन्यथा उसका स्वाभिमान और सम्मान के साथ

जीना संभव नहीं हो पाता। स्त्री अपने स्वत्व को बचाये रखने के लिए चाहे कितने ही अधिक प्रयत्न क्यों न करे, धर्म की रूढ़ियों ने स्त्री को नीति, परिणय बंधन, पातिव्रत्य, यौन शुचिता जैसे कई सारे पाशों में इतना अधिक जकड़ लिया है कि उसकी सारी स्वाधीनता और संबंधों का खुलापन बाधित हो गया है।

समाज में स्त्री की अस्मिता केवल संबंध वाचक तत्वों के ताने-बानों में बंधी हुई रह गई है। कहीं वह माँ-बेटी, पत्नी, बहू आदि के रूप में स्वीकारा जाती है और कहीं दूसरे तमाम प्रकार के पारिवारिक रिश्तों के नेटवर्क में। यहाँ आकर हर स्त्री यह महसूस करती है कि मात्र स्त्री के रूप में उसका कोई मौलिक अस्तित्व या पहचान सुरक्षित नहीं है। जो कुछ है वह परायों की सोच, स्वभाव और व्यवहार पर निर्भर है। दुनिया की लगभग हर स्त्री यही महसूस करती है कि उसे अपने लिए अपना संसार तलाशना है और जब तक वह बँधी है तब तक वह शायद ही कुछ कर



पाए। अपनी पहचान बनाने का संकट हर स्त्री के लिए जीवन की वह बड़ी समस्या बना रहता है कि जिसे ताजिन्दगी भूल नहीं पाती। बस यहीं से तलाश शुरू होती है स्व अस्मिता की। इसके लिए स्त्री अपने स्तर पर प्रयास करती है और तमाम उपायों तथा हुनर का इस्तेमाल कर वह अपने आपको आगे बढ़ाने, अपनी पहचान कायम करने के लिए आतुर रहा करती है। दृढ़ संकल्प और प्रगाढ़ आत्मविश्वास हो तो स्त्री को अपने लक्ष्य में सफलता पाने में कहीं कोई दिक्कत नहीं आती लेकिन जहाँ आत्महीनता और परिवेशगत उलझनों का संसार सामने आ जाता है वहाँ स्त्री का हताश-निराश हो जाना स्वाभाविक है।

अपनी कल्पनाओं के वजूद को आकार देने के लिए जहाँ खुद स्त्री को अपने दृष्टिकोण और मानसिकता में बदलाव लाने की जरूरत है वहीं स्त्री के प्रति परिवेश और समाज के चिन्तन की धारा में भी परिवर्तन की बयार लाने की आवश्यकता है। भारतीय संस्कृति और परंपराओं में नारी के वजूद को हर तरफ स्वीकारा गया है। यहाँ तक कि नारी को शक्ति का प्रतीक माना गया है। प्राचीन साहित्य में 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' कहकर स्त्री की श्रेष्ठता और स्वीकार्यता दोनों को प्रतिष्ठा दी गई है। यहाँ तक कि उस काल में स्त्री का नाम पहले हुआ करता था जैसे कि सीताराम, राधाकृष्ण आदि-आदि। वैदिक काल के उपरान्त परवर्ती काल में इस धारणा में कुछ न कुछ क्षरण हुआ और उसी का नतीजा है कि आज नारी को अपनी अस्मिता के लिए औरों पर निर्भर रहना पड़ रहा है।

'स्त्री की स्थिति भी युगों से ऐसी ही चली आ रही है। उसके चारों ओर संस्कारों का ऐसा क्रूर पहरा रहा है कि उसके अंतरतम जीवन की भावनाओं का परिचय पाना ही कठिन हो जाता

है। वह किस सीमा तक मानवी है और उस स्थिति में उसके क्या अधिकार रह सकते हैं, यह भी वह तब सोचती है जब उसका हृदय बहुत अधिक आहत हो चुकता है।'¹

आधुनिक स्त्री की यही मांग रही है कि उसे स्त्री के रूप में पृथक व्यक्तित्व की पहचान मिले और स्वतंत्र जीवनयापन के सभी अवसर उसी तरह मिलें जिस तरह औरों को प्राप्त होते रहे हैं।

स्त्री विमर्श के मौजूदा दौर में यही सबसे बड़ा मुद्दा है जिसे हिन्दी साहित्य के मुख्य विषयों में स्थान मिला है। साहित्य की तकरीबन सभी विधाओं में स्त्री विमर्श प्रमुख तौर पर छाया रहा है।

समकालीन महिला उपन्यासकारों उषा प्रियंवदा, प्रभा खेतान, मन्नू भण्डारी, नासिरा शर्मा, मैत्रेयी पुष्पा, शिवानी आदि ने सामाजिक विद्रूपताओं तथा संकीर्णताओं के बावजूद अपने लेखन में नारी को गरिमामय रूप प्रदान करने का सफल प्रयास किया है।

'स्त्री अस्मिता को माँ, बहन, बेटी, बीबी, रखैल, वेश्या की कोटियों से बाहर लाकर एक स्त्री के रूप में देखे जाने की मानसिकता का प्रादुर्भाव स्त्री साहित्य से ही हुआ है।'²

'माई' में स्त्री अस्मिता

गीतांजलि श्री के सृजन में स्त्री विमर्श प्रधान रहा है। उनके उपन्यास 'माई' में स्त्री की आत्मा के अन्वेषण का प्रयास है। इसमें उत्तरप्रदेश के किसी छोटे शहर के प्रतिष्ठित परिवार की कहानी है। बेहद सादगीपूर्ण लेखन वाली इस कहानी में स्वातंत्र्योत्तर मध्यवर्गीय लोक जीवन के संदर्भ में स्त्री जीवन के यथार्थ को प्रतिबिम्बित किया गया है।

'माई कब उठती थी, क्या खाती थी, कैसे रहती थी शुरू में तो हमने सोचा ही नहीं। और बाद में



जब सोचने लगे तो हम उसको चाहते और उस पर दया करते।³

‘माई’ उपन्यास राजसी परिवेश के एक सम्पन्न परिवार की तीन पीढ़ियों की कहानी अभिव्यक्त करता है। माई की आज्ञाकारिता, सेवाव्रत और औदार्य भाव इतना है कि अपने सेवा कर्म में रत रहने की वजह से उसकी कमर झुक चुकी है और जीवन से निराश हो चुकी है।

माई माँ की जिन्दगी और उसकी समस्याओं से भरे पलों को खुली आँखों से देखते हुए शिद्धत के साथ महसूस किया गया है कि माई अपने आप में वह विलक्षण व्यक्तित्व है जो सारी विषम परिस्थितियों के बावजूद अपने में ही रमी हुई है। “हम माई को बचाते रहे। वह कमजोर है, कठपुतली है, हमारे अलावा उसका कोई नहीं है। इतनी कमजोर है कि हम उसके लिए लड़ते हैं और वह ऐन वक्त पर पीछे हट जाती है और हमारा चीख हवा से टकराकर चारों दिशाओं में छितर जाती।⁴ समाज में गहरे तक पैठी हुई पौरुषी मानसिकता के कारण सबसे अधिक प्रताड़ित स्त्री होती रही है। माई उपन्यास में स्त्री की इसी मानसिकता को इन शब्दों में अभिव्यक्त किया गया है - “त्याग करना और कुछ पाना हमारे यहाँ की सदियों पुरानी प्रथा है। माई कष्ट सहके त्याग करती, दूसरे कुछ पा जाते।⁵ गीतांजलि श्री का समग्र लेखन समसामयिक परिवर्तन के दौर और स्त्री के संदर्भ में पनपी मान्यताओं पर केन्द्रित है जहाँ स्त्री का बहुआयामी जीवन दर्शन कभी परंपराओं की ओर खिंचा चला जाता है और कभी आधुनिकताओं की हवा में झूलता हुआ पेण्डुलम की तरह दिखता है। “माई की सहनशीलता और लाज का प्रशान्त वह पर्दा। सबकी सुनती, सबकी करती वह सीरत-पाक छाँह।⁶

कोमलांगियों के कोमल मन और तन पर जाने कितने कटाक्षों के घाव, प्रताड़नाओं के गहरे जख्म और अनकही अनमनी व्यथा कथाओं के कबाड़ से भरे दिमाग को देखकर यही लगता है कि स्त्री अपने आप में कितने दर्द और उलाहनाओं के समवेत स्वरो के बीच कुण्ठाओं के साथ जीने को विवश है।

माई की अंधेरो से भरी जिन्दगी में यह उपन्याय सूरज की रश्मियों की तरह हर घटना को पारदर्शी स्वरूप में प्रकटाने का खतरा उठाता प्रतीत होता है। “माई में हम और माई हमारे लिए, यही हमारा जानना था। तभी उसका सबकी मंशापूर्ति के लिए कठपुतली बनना, फिर उनके जूठन पर जिंदा रह लेना, हमें क्रोध से पागल किए जा रहा था।⁷

निष्कर्ष

‘स्त्री अस्मिता’ या उसके अधिकार का प्रश्न नारी का प्रश्न मात्र नहीं है बल्कि सम्पूर्ण मानवता और मानव जाति का प्रश्न है। इस गंभीर विषय पर हम सभी को पूरी ईमानदारी और पारदर्शिता के साथ मंथन करने की आवश्यकता है। समाज में अधिकार या स्वतंत्रता की मांग करने को उद्यत स्त्री के बारे में यह नहीं माना जाना चाहिए कि ऐसा वह परिवार या समाज से पृथक अस्तित्व के लिए कर रही है। स्त्री समन्वय का ही दूसरा नाम है और जीवन के हर मोड़ पर वह समन्वय के लिए आत्मीय प्रयत्नों में कहीं कोई कमी नहीं रखती। “पुरुष से अलग रहकर संसार बसाने की बात नारी नहीं करती, समाज को भी स्त्री को अपनी मुट्ठी में कैद करने की ललक से आजाद होना चाहिए।⁸

यह समाज का दायित्व है कि सोच को बदले, स्त्री के प्रति सहज, सदाशी और उत्तरदायी बने तथा उसके अस्तित्व को दिल से स्वीकारे। ऐसा



होने पर ही स्त्री मुक्ति और उसकी अस्मिता का
उद्घोष आनंददायी हो सकता है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. महादेवी वर्मा : श्रृंखला की कड़ियाँ, पृष्ठ 92
2. डॉ. फिरोज जाफर अली : स्त्री-अस्मिता का संघर्ष :
नये प्रश्न और नई चुनौतियाँ 2011
<http://chhattisgarh.vivek.blogspot.in/2011/12/blog-post-8143.html> date 27-1-2017
3. गीतांजलि श्री, 'माई' पृष्ठ 17
4. वही, पृष्ठ 51
5. वही, पृष्ठ 53
6. वही, पृष्ठ 22
7. वही, पृष्ठ 50
8. हँस, जनवरी 2002, पृष्ठ सं 84